| e-ISSN: 2319-8753, p-ISSN: 2320-6710| www.ijirset.com | Impact Factor: 7.512|

|| Volume 9, Issue 7, July 2020 ||

मुक्तिबोध का काव्यशिल्प

डॉ सरोज

एसोशिएट प्रोफेसर -हिन्दी विभाग, का.सु.साकेत स्नातकोत्तर महाविद्यालय अयोध्या

सारांश

मुक्तिबोध हिन्दी साहित्य के ऐसे कवि हैं जिन्होंने छायावाद से काव्य रचनाएं आरम्भ की और प्रगतिवाद, प्रयोगवाद व नई कविता की युगधाराओं से जुड़ते हुए काव्य में ऐसी काव्य भाषा और शिल्प का प्रयोग किया। मुक्तिबोध हिन्दी साहित्य के ऐसे कवि हैं जिन्होंने छायावाद से काव्य रचनाएं आरम्भ की और प्रगतिवाद, प्रयोगवाद व नई कविता की युगधाराओं से जुड़ते हुए काव्य में ऐसी काव्य भाषा और शिल्प का प्रयोग किया जो आगामी रचनाकारों के लिए बहुत बड़ा प्रेरणा स्रोत बनी। मुक्तछन्द की सटीक व कठिन किन्तु सहजग्राह्य भाषा के प्रयोग के लिए उन्हें कबीर तथा निराला परम्परा को अग्रसर करने वाला काव्य प्रेरक माना जाता है। मुकितबोध काव्य की भाषा और शिल्प की पहचान उनके अनूठे प्रतीक, बिम्ब, अलंकार, प्रचुर शब्द का विविधतापूर्ण प्रयोग, मुहावरे-लोकोक्तियों के प्रयोग तथा छन्द विधान के सार्थक प्रयोग के साथ फैंटेसी के रूप में हिन्दी साहित्य में अपनी विशिष्ट पहचान अंकित करती है।

काव्य सृजन प्रक्रिया दो प्रमुख आधारों पर टिकी होती है, जो कवि व्यक्तित्व को निखारती है। रचनाकार अपने अनुभवों द्वारा जीवन उद्देश्यों को काव्य रूप देकर संप्रेषणीय आधार प्रदान करता है और यह संप्रेषण काव्यगत सृजनात्मक विचारशीलता से सिद्ध होता है काव्य शक्ति और भाषायी शक्ति द्वारा। काव्य में भावों के साथ भाषा भी अपनी विशिष्टता रखती है। अनुकूल भाषा के अभाव में बड़े से बड़े कवि के भाव भी सही अर्थों में अभिव्यक्त नहीं हो पाएंगे। इस विषय में मुक्तिबोध ने एक स्थान पर लिखा है, "कवि भाषा का निर्माण करता है। जो कवि भाषा का निर्माण करता है, विकास करता है, वह निस्संदेह महान होता है।1 भाषा एक जीवित परम्परा है जो निरन्तर चलती रहती है। भाषा एक सामाजिक निधि है जो साहित्य में रचनाकार की अनुभूति के रूप में उतर साहित्य जगत को रौशन करती है। मुक्तिबोध के अनुसार, "कलाकार को शब्द साधना द्वारा नये-नये भाव और नये अर्थ स्वप्न मिलते हैं। आम बोलचाल की भाषा में निरन्तर परिवर्तन के कारण जब परिनिष्ठित और मानक रूप ग्रहण कर लेती है तब वह काव्य भाषा बन जाती है। काव्य भाषा बहुत से उपादानों से मिलकर तैयार होती है। इसका शब्दभण्डार जितना समृद्ध होगा उस भाषा का काव्य साहित्य उतना ही समृद्ध होगा क्योंकि कवि मूलत: शब्दों का ही साधक होता है, क्योंकि कवि की अभिव्यक्ति भाषा के द्वारा नही अपितु शब्दों से पूर्णता पाती है। अज्ञेय इस तथ्य को स्पष्ट करते हुए कहते हैं, मेरी समस्या की जड़ यही है। मेरी खोज भाषा की खोज नहीं केवल शब्दों की खोज है।

परिचय

भाषा का उपयोग मैं करता हूं निस्सन्देह। लेकिन कवि होने के नाते जो मैं कहता हूं वह भाषा के द्वारा नहीं केवल शब्दों के द्वारा। शब्दकोश की भाषा वैज्ञानिक मानी जाती है। लेकिन भारतभूषण अग्रवाल ने नयी कविता के नए कवि के लिए नयी भाषा के प्रयोग पर बल दिया है, पर नए कवि को यह सुविधा प्राप्त नहीं, उसे प्रचलित भाषा में ही नया अर्थ भरना है। नयी अभिव्यक्ति का माध्यम पाना है। यही नहीं उसके आस पास एक विदेशी भाषा का ऐसे धड़ल्ले से व्यपार होता है। यथार्थ की भूमि पर जो काव्य खड़ा है उसका माध्यम यथार्थ भाषा ही हो सकती है। शब्दकोष की भाषा नहीं।

मुक्तिबोध एक सशक्त यथार्थवादी कवि रहे हैं, अत: उनकी काव्य भाषा उनके अपने दृष्टिकोण से प्रभावित रही है। उनकी काव्य भाषा भी उनकी विचारधारा की विशिष्टताओं की तरह मौलिक है। जगदीश गुप्त मुक्तिबोध की कविताओं के बारे में लिखते हैं, मैं उनकी कविताओं को पढक़र इस निष्कर्ष पर पहुंचा हूं कि उन्होंने अपनी अभिव्यक्ति के अनुरूप रूपकों, प्रतीकों, बिम्बों की परिकल्पना करते हुए सशक्त भाषा गढ़ी है। अत: जितने अंशों में उनकी अभिव्यक्ति सफल हुई है उतने अंशों में वे अपनी मान्यता के अनुरूप महान कहलाने के हकदार हैं। वस्तुत: कवि को भाषाभिव्यक्ति ही महान बनाने में सहायक होती है इसलिए काव्य भाषा को सुदृढ़ और विचाराभिव्यक्ति में सक्षम होना आवश्यक है। मुक्तिबोध अपने सम्पूर्ण कवि जीवन में भाषा के प्रति बड़े सचेष्ट रहे हैं। उनकी प्रत्येक रचना कई बार कांट-छांट के बाद ही पूरी होती। एक यथार्थवादी कवि होने के नाते उन्होंने अपनी भाषा को अपनी यथार्थ अभिव्यक्ति के अनुरूप ही प्रयुक्त किया। मुक्तिबोध के अनुसार कलाकार भाषा का निर्माण भी करता है। मुक्तिबोध की काव्य भाषा विभिन्न शब्दावलियों का मिश्रित रूप है। जिस भाव या विचार के लिए जो भी भाषा उचित रही उसी का प्रयोग किया। भावानुरूप संवेदनानुसारी शब्दक्रम शैली की रचना कवि के लिए आसान काम नहीं है। उन्होंने अपनी काव्य भाषा में तत्सम, तदभव, अरबी, फारसी, अंग्रेजी सभी भाषाओं का प्रयोग किया गया है। मुक्तिबोध के काव्य की सबसे बड़ी विशेषता यही है कि उसमें युग की नई चेतना नये रूप में अभिव्यक्त हुई है वह भी नई काव्य भाषा में। जिसमें चेतना और भावना के विद्रोह के साथ भाषा का विद्रोह भी मिलता है। मुक्तिबोध सौंदर्य और अलंकार पर ध्यान न देकर शब्द के अर्थ की शक्ति पर ध्यान देते थे। मुक्तिबोध ने अपने जीवन के भावों और विचारों की यथार्थ अभिव्यक्ति के लिए कविता को लालटेन की रौशनी जैसे बनाने का प्रयास

किया है। उन्हीं के शब्दों में, कविता यदि जीवन वहन का लालटेन हो सके तो इसका हमें प्रयत्न करना होगा।[1] यथार्थ जीवन उबड़-खाबड़ और संघर्ष से भरा होने के कारण यथार्थ की काव्य भाषा भी ऐसी ही होती है। मुक्तिबोध काव्य के दो प्रकार का मानते हैं- यथार्थवादी और भाववादी या रूमानी। उनके अनुसार, कलाकृति स्वानुभूत जीवन की कल्पना द्वारा पुनर्रचना है। यथार्थवादी शिल्प के अन्तर्गत, कलाकृति यथार्थ के अन्तर्नियमों के अनुसार यथार्थ के बिम्बों की क्रमिक रचना प्रस्तुत करती है किन्तु भाववादी रोमांटिक शिल्प के अन्तर्गत कल्पना अधिक स्वतन्त्र होकर जीवन की स्वानुभूत विशेषताओं को समष्टि चित्रों द्वारा, प्रतीक चित्रों द्वारा प्रस्तुत करती है। मुक्तिबोध अपने इस विचार को कभी सीधे प्रस्तुत करते हैं कभी फैंटेसी में लपेटकर। भाषा प्रयोग के बारे में मुक्तिबोध ने अपने काव्य के द्वारा स्पष्ट किया कि-
वे कहते हैं : भाषा विचित्र/ जिसमें शब्द हैं कलाहीन/ जिसमें प्रयोग है ग्रम्य और वे अति कठोर/ जो भी नवीन/ पर तू सुन मत ओ कलाकार/ तेरे शब्दों में लाख लाख दिलवालों का उदगार।
मुक्तिबोध अपनी लम्बी कविताओं में विविधतापूर्ण शब्दों का प्रयोग करते हैं। भाषा के प्रयोग में उनकी विचारधारा यथार्थ के मार्ग पर जाती हुई दिखाई देती है। उनका काव्य भाषा में कभी संस्कृतनिष्ठ सामाजिक पदावली की अलंकार वीथिका से गुजरती है कभी अरबी फारसी तथा उर्दू के नाज़ुक लजीले हाथों को थाम कर चलती है कभी अंग्रेज़ी की इलैक्ट्रिक ट्रेन पर बैठकर जल्दी से खटाक-खटाक निकल जाती है और कभी विशाल जनसमूह के शोरगुल और धक्के-मुक्के के बीच एक-एक पर तीव्र दृष्टि डालती हुई रूक-रूक कर चलती है। मुक्तिबोध ने अपनी इस नई चेतना की अभिव्यक्ति के लिए जिस भाषा का प्रयोग किया, उससे स्पष्ट रूप से मुक्तिबोधपन है। विविध रूपी भाषा के साथ मुक्तिबोध अपनी काव्याभिव्यक्ति को प्रभावशाली बनाने के लिए रंगों का भी सार्थक प्रयोग किया है और ये रंग यथार्थ की प्रतीती के लिए उनके काव्य में आकर अपनी प्रतीकात्मकता को सफलतापूर्वक सिद्ध करते हैं। जैसे- 'लाल पीली लौ, काली-काली जीभ' वाली लालटेन उनकी भावाव्यक्ति को प्रभावोत्पादक बनाते हैं। मुक्तिबोध की भाषायी शक्ति उनके मुहावरा प्रयोग में छिपी है जिनका चयन उन्होंने अभिव्यक्ति की सारगर्भिता के लिए किया है। मुक्तिबोध ने अपने काव्य में केवल इनका प्रयोग ही नहीं किया अपितु नये मुहावरे गढ़े भी हैं। उनके काव्य में प्रयुक्त मुहावरों का पूरा भण्डार है। यथा- जमाना सांप का काटा, सच्चाई की आंख निकलना, दिल की बस्ती उजाडऩा, हार का बदला चुकाना, मन टटोलना, थाह लेना, धर लिया जाना, अपना गणित करना, टूट पडऩा, ज़माना सख़्त होना, मूठ मारना, मछलियां फसाना, देवदासी चोलियां उतारना, ज़िंदगी के झोल, बौद्धिक सींग उगना, आंख फाडक़र देखना, केंचुली उतारना, उर में तिर आना, आंखों देखी, सिर फिरना, सिटी पिटी गुम होना, लार टपकना, जीतोड़ मेहनतकश, रास्ता काटना, भौंहें चढ़ाना, आईना होना, भाग खड़े होना, दांत पीसना, दांत किटकिटाना, गुल करना आदि मुहावरों का प्रयोग उनकी काव्य को स्पष्ट और यथार्थ अभिव्यक्ति के लिए महत्त्वपूर्ण है। जो बात कवि सीधे नहीं कह सकते उसे मुहावरों के द्वारा और भी सशक्त रूप से चित्रित कर सकता है। अपने काव्य शिल्प को अधिक गंभीर बनाने के लिए मुक्तिबोध ने काव्य भाषा के साथ अलंकारों का भी आश्रय लिया- घबराए हुए प्रतीक और मुस्कराते रूप चित्रण लेकर मैं/ घर लौटता हूँ /उपमाएं द्वार पर आते ही कहती हैं/ कितने बरस तुम्हें और जीना ही चाहिये। चांद का मुंह टेढ़ा है कविता में चांदनी का स्थान स्थान पर मानवीकरण किया गया है। कहीं वह हंसती है, रोती है, जीती है, मरती है, या फिर धाराशाही चांदनी के होंठ काले पड़ गए। मुक्तिबोध काव्य में सर्वथा मौलिक मानवीकरण किया गया है, और अरूप आत्मा को रूपायित करने के प्रयास किए गए है।

विचार – विमर्श

मुक्तिबोध काव्य में मुक्त छंद का प्रयोग अपनी विद्रोही और यथार्थ प्रवृत्ति के कारण करते हैं। मुक्तिबोध काव्य में सामान्य जीवन से कई अछूते प्रतीकों को लिया गया है। इन प्रतीकों में जीवन से संबंधित क्रिया कलापों एवं दैनिक घटनाओं का वर्णन प्रतीकात्मक रूप में किया जाता है। यांत्रिक सभ्यता से अभिशप्त जीवन के प्रतीकों को लेकर आग के कण्डों पर टिक्कड़ सेंकते मजदूरों तक को प्रतीक का विषय बनाया गया। यहां कण्डे की लाल आग जन चेतना का प्रतीक है जो चिन्तन टिक्कड़ पका रही है। इसी प्रकार मजदूरों के राज़मर्रा के जीवन में प्रयुक्त किए जाने वाली वस्तुओं को भी काव्य में प्रतीकों के रूप में अपनाया गया। ऐसे ही ईमान का डण्डा, बुद्धि का बल्लम, अभय की गेती, हृदय की तगारी, तसला शोषित जीवन से लिए गए प्रतीक हैं। समकालीन कवियों में मुक्तिबोध ने फैंटेसी का प्रयोग अपने काव्य में सर्वाधिक किया है। मुक्तिबोध ने अपने काव्य में फैंटेसी का प्रयोग अनेक कारणों से किया है। एक तो वे अंतर्मुखी कवि रहे हैं दूसरे मार्क्सवादी विचारधारा से जुडऩे के कारण भी फैंटेसी का प्रयोग किया। आज जीवन के यथार्थ पर मिथ्या और पाखण्ड की अनेक पर्तें जमी हैं। मुकितबोध फैंटेसी के द्वारा पाठक वर्ग को इन से परिचित कराना चाहते हैं। मुक्तिबोध की फैंटेसी में उपमा, रूपक, दृष्टान्त, अलंकार, बिम्ब, प्रतीक एक साथ मिल कर लम्बी कविताओं में फैंटेसी का रूप लेकर प्रयुक्त हुए हैं जिसमें पहाड़, पठार गुफा, समुन्दर, अंधेरा, बावड़ी, आत्म संभावना, अंतर्मन का डर से अनेक प्रकार के दबाव व तनावों की अभिव्यक्ति हुई है। इसमें कवि की अतिरंजित कल्पना ही इस अदभुत सत्य को प्रस्तुत करती है। असाधारण भाषा, प्रतीक, बिम्ब प्रयोग इस फैंटेसी को ट्रेजिडी रूप में चित्रित कर सके हैं। ट्रेजिडी अक्सर फैंटेसी में ही होती है। अंधेरे में फैंटेसी के स्तर पर नाटय शैली में अभिव्यक्त है। कवि स्वप्न के माध्यम से फैंटेसी रच कर यथार्थ का चित्रण करता है। [2,3] मुक्तिबोध के अनुसार, कभी कभी फैंटेसी जीवन की विस्तृत वास्तविकताओं को लेकर उपस्थित होती है और कथा के अंतर्गत जो पात्र, चरित्र और कार्य प्रस्तुत होते हैं वे सभी प्रतीक होते हैं- वास्तविक जीवन तथ्यों के। मुक्तिबोध भाषा विचार के लिए किसी रूढियों का सहारा नहीं लेते। मुक्तिबोध की समर्थ भाषा उनके काव्य को प्राणवान बनाने में समर्थ है। वे प्रगतिवादी, प्रयोगवादी और विद्रोही

कवि रहे हैं। उन्होंने लम्बी कविताओं में फैंटेसी का प्रयोग, मुक्त छंद का प्रयोग, नये प्रतीकों का प्रयोग, नये भाषा शब्दों का प्रयोग करके पुरानी रूढ़ियों के प्रति विद्रोह किया है।

यह इकाई गजानन माधव मुक्तिबोध के काव्य शिल्प के अध्ययन से संबंधित है। मुक्तिबोध के काव्य शिल्प को फैंटेसी के विशेष संदर्भ में समझाने का प्रयास इस इकाई में किया गया है। इस इकाई के अध्ययन के बाद आपः

काव्य शिल्प के रूप में फैंटेसी के महत्व को समझ सकेंगे,

फैंटेसी के स्वरूप और प्रकृति की जानकारी प्राप्त कर सकेंगे,

फैंटेसी के शिल्प की विशेषताएँ जान सकेंगे,

मुक्तिबोध ने फैंटेसी शिल्प का अपनी काव्य-रचना में किस प्रकार सर्जनात्मक उपयोग किया है – यह समझ सकेंगे, और

फैंटेसी के संदर्भ में मुक्तिबोध के काव्य शिल्प की अन्य विशेषताएँ जान सकेंगे।

इस इकाई के अंतर्गत हम मुक्तिबोध के काव्य-शिल्प पर विस्तार से विचार करेंगे। मुक्तिबोध ने अपने लिए फैंटेसी के शिल्प को चुना था, जिसमें मिथक, प्रतीक, रूपक, उपमा, बिंब आदि अभिव्यक्ति के विभिन्न उपकरण घुल-मिलकर आए हैं। अत: इस इकाई के अंतर्गत ही उपर्युक्त उपकरणों के महत्व पर भी प्रकाश डाला जाएगा। वस्तुत: "फैंटेसी' आपके लिए एक नया शब्द है, जो हिंदी का अपना न होकर अंग्रेज़ी का शब्द है। अत: इसके अर्थ के साथ ही फैंटेसी के स्वरूप, उसकी प्रकृति के विषय में मनोविश्लेषणवादी मनोवैज्ञानिकों, क्रिस्टोफर काडवेल जैसे समर्थ साहित्यिक चिंतकों की मान्यताओं पर भी विचार करना ज़रूरी है। फैंटेसी का मुक्तिबोध-सम्मत अर्थ "एक साहित्यिक की डायरी' के "तीसरा क्षण" शीर्षक निबंध और "कामायनी : एक पुनर्विचार' शीर्षक समीक्षात्मक ग्रंथ में विस्तार से स्पष्ट हुआ है।

यहाँ उसे संक्षेप में ही प्रस्तुत किया जाएगा। लेकिन इससे पूर्व विषय-वस्तु, रूप या शिल्प के संबंध को लेकर मुक्तिबोध की मान्यताओं से आपका परिचय होना आवश्यक है। कथ्य और शिल्प के पारस्परिक संबंध के विषय में मुक्तिबोध की यह मान्यता रही है कि इन दोनों को एक-दूसरे से पूरी तरह अलग-थलग कर के हम इनका वास्तविक मूल्यांकन नहीं कर सकते। इस तथ्य को समझने के लिए उनकी समीक्षात्मक कृतियों के हवाले की अपेक्षा एक कवितांश को उद्धरण के रूप में विवेचित विश्लेषित करना अधिक व्यावहारिक होगा :

"अधूरी और सतही ज़िन्दगी के गर्म रास्तों पर
हमारा गुप्त मन
निज में सिकुड़ा जा रहा
जैसे कि हब्शी एक गहरा स्याह
गोरों की निगाहों से अलग ओझल
सिमिट कर सिफर होना चाहता हो जल्द।।
मानो कीमती मजमून
गहरी गैर कानूनी किताबों, जब्त पर्चों
को कि पाबंदी लगे से भेद सा बेचैन
दिल का खून
जो भीतर
हमेशा टप्प टप कर टपकता रहता
तड़पते से खयालों पर
यही कारण कि सिमटा जा रहा सा हूँ
स्वयं की छाँह की भी छाँह सा बारीक
होकर छिप रहा सा हूँ
समझदारी व समझौते
विकट गड़ते।
हमारे आप के रास्ते अलग होते।
व पल भर मात्र
आत्मलोचनात्मक स्वर प्रखर होता।"
(चकमक की चिनगारियाँ" पहला बंद)

यहाँ कवि ने बाह्यमन, जो अधिकांशत: दुनियादार होता है, उस के दबाव से गुप्त मन (अन्तरात्मा) के संकुचित होने, छिप जाने को बहुत से गोरों की निगाहों से बचने-छिपने वाले हब्शी की स्थिति और सरकारी पाबंदी लगे हुए सत्य की अभिव्यक्ति की छटपटाहट

| e-ISSN: 2319-8753, p-ISSN: 2320-6710| www.ijirset.com | Impact Factor: 7.512|

|| Volume 9, Issue 7, July 2020 ||

की स्थिति जैसे दो उपमानों द्वारा प्रस्तुत किया है। आप गौर करें कि यद्यपि अंतिम दोनों स्थितियाँ जो अभिव्यक्ति का उपकरण बन कर आयी हैं, अप्रस्तुत हैं, और प्रस्तुत का बिंब-ग्रहण कराने के लिए इनकी योजना की गयी है, फिर भी ये उपकरण कथ्य का अभिन्न अंग बनकर उसे और अधिक सम्पन्न करते हैं। इनके माध्यम से मुक्तिबोध का आत्मसंघर्ष, उसकी दिशा, दृष्टि और मूल्य-भावना भी संकेतित हुई है। यदि इन दोनों उपमानमूलक उपकरणों को काव्यांश से निकाल दिया जाए तो भी लाक्षणिक प्रयोगों और बिंबात्मक शिल्प के माध्यम से मूल कथ्य की अभिव्यक्ति तो हो जाती है।

लेकिन इन्हें निकाल देने पर मुक्तिबोध की निजी वेदना और छायावादी कवियों, नयी कविता के कवियों की वेदना के मध्य जो अंतर है, वह पूरी तरह समाप्त हो जाएगा। "गोरों की निगाहों से छिपकर सिफर होने वाला हशी" आज के विश्व-व्यापी उत्पीड़न और शोषणचक्र का एक सत्य है, जो कवि के गहन सामाजिक सरोकार से भी जुड़ा हुआ है। "गैर कानूनी किताबों और जब्त परचों में छिपा हुआ "कीमती मजमून' केवल आज की दुनिया भर की सच्चाई ही नहीं, वरन् मुक्तिबोध के व्यक्तिगत अनुभव का भी एक अंग है। सन् 52 में 'कामायनी" पर लिखी गई उनकी प्रथम समीक्षात्मक रचना मुद्रित होकर भी प्रकाशक की अनुदारता से प्रकाश में नहीं आई और दूसरी रचना "भारत:इतिहास और संस्कृति" सन् 62 ई० में मध्य प्रदेश सरकार के शिक्षा विभाग द्वारा पाठ्यक्रम में निर्धारित होने के बावजूद उसी सरकार के गृह मंत्रालय द्वारा गैर कानूनी (प्रतिबंधित) घोषित कर दी गई थी।[4,5]

परिणाम

फैंटेसी मूलत: मनोविश्लेषण शास्त्र से संबद्ध शब्द है, जिसकी व्याख्या स्वप्न के संदर्भ में फ्रायड और युंग ने की है। यद्यपि इन दोनों मनोविश्लेषणवादियों ने स्वप्न से फैंटेसी को अलग करने का प्रयास किया है, लेकिन युंग ने "अभिप्रेरित चिंतन" (डायरेक्टेड थींकिंग) के रूप में विवेक द्वारा नियंत्रित सत्य के सामाजिक मानदंड के रूप में इसे स्वीकार किया है। प्रसिद्ध मार्क्सवादी समीक्षक क्रिस्टाफर काडवेल ने इस व्याख्या को अंशत: स्वीकार किया है और इसे "अभिप्रेरित अनुभूति" (डायरेक्टेड फीलिंग) सिद्ध करते हुए सौंदर्य या अच्छाई का सामाजिक मानदंड माना है। (इल्यूजन एंड रिएलिटी, पृ0 160-61) फैंटेसी विवेक-प्रक्रिया द्वारा अनुशासित न होकर हृदय या मन द्वारा अनुशासित होती है। फैंटेसी से संबद्ध विस्तृत जानकारी के लिए आप अशोक चक्रधर की पुस्तक 'मुक्तिबोध की काव्यप्रक्रिया के पृष्ठ 72 से 84 तक अवश्य देख लें।

मुक्तिबोध ने फैंटेसी के संदर्भ में काडवेल की व्यवस्था को अधिकांशत: स्वीकार किया है किंतु "अभिप्रेरित अनुभूति(डायरेक्टेड फीलिंग) के स्थान पर उसे "संवेदनात्मक उद्देश्य' से नियंत्रित एक सक्रिय-सर्जनात्मक इकाई के रूप में ग्रहण किया है 'फैंटेसी डायनेमिक होती है। कला के प्रथम क्षण के अंतिम सिरे पर उत्पन्न होते ही उसकी गतिमानता शुरु हो जाती है।" (एक साहित्यिक की डायरी, पृ0 20) कला के प्रथम क्षण अर्थात् "जीवन के उत्कट तीव्र अनुभव क्षण' के अंतिम सिरे और कला के दूसरे क्षण अर्थात् सौंदयानुभूति के आरंभिक सिरे पर उत्पन्न फैंटेसी वस्तुत: निर्वैयक्तिकता की ही . एक स्थिति को संकेतित करती है। निर्वैयक्तिकता की यह स्थिति ही मुक्तिबोध द्वारा निरूपित कला का दूसरा क्षण अर्थात् फैंटेसी का क्षण है, जिसके संबंध में मुक्तिबोध ने लिखा है, "जो फैंटेसी अनुभव की व्यक्तिगत पीड़ा से स्वतंत्र होकर, अनुभव के भीतर की ही संवेदनाओं के द्वारा उत्सर्जित और प्रक्षेपित होगी वह एक अर्थ में वैयक्तिक होते हुए भी निर्वैयक्तिक होगी। उस फैंटेसी में अब एक भावनात्मक उद्देश्य की संगति आ जाएगी, इस संवेदनात्मक उद्देश्य के द्वारा ही वस्तुत: फैंटेसी को रूप-रंग "मिलेगा।"-

'फैंटेसी" के शिल्प की विशेषताओं का अत्यंत स्पष्ट और व्यावहारिक विवेचन मुक्तिबोध ने "कामायनी : एक पुनर्विचार' में किया है। फैंटेसी और जीवन के संबंध को स्पष्ट करते हुए मुक्तिबोध ने लिखा है, 'फैंटेसी में प्रतिच्छायित जीवन-तथ्य – फैंटेसी के अपने फ्रेम के अंग ही हों, यह आवश्यक नहीं। आवश्यक इतना ही है कि फैंटेसी के रंग जीवन-तथ्यों के रंग से मिलते-जुलते हों अथवा उन तथ्यों के रंग से अनुस्यूत हों। हम मनु के कथन का एक उदाहरण लें :

"तुम हो कौन और मैं क्या हूँ
इसमें है क्या धरा सुनो,
मानस जलधि रहे चिर-चुम्बित,
मेरे क्षितिज उदार बनो।'

"इस फैंटेसी का फ्रेम, उसका ढाँचा वस्तुत: अध्यात्मवादी है। इसलिए प्रिय-सौंदर्य को क्षितिज कहा गया है। "तुम कौन"? "मैं कौन"? ये प्रश्न भारतीय दर्शन के अंग रहे हैं। इन प्रश्नों में आत्मा-परमात्मा का प्रश्न द्योतित है। किंतु उपर्युक्त काव्य-पंक्तियों की सारी अर्थ दीप्ति कहाँ से स्फुरित हुई है? प्रियतम और प्रेयसी के परस्पर संबंधों के जीवन-तथ्य से। संक्षेप में, कवि जीवन के प्रणय-तथ्य का उद्‌घाटन कर रहा है। तुम कौन हो मैं कौन हूँ, हमारी वास्तविक स्थिति और स्तर क्या है इससे हमें मतलब नहीं। हम प्रेम करते हैं, इतना काफी है, इस फैंटेसी का ढांचा अध्यात्मवादी-रहस्यवादी है, किंतु उसका मूल तथ्य प्रणय-तथ्य है।

निष्कर्ष यह है कि फैंटेसी का आकार (ढाँचा) तो अपना होता है, किंतु उसमें रंग जीवन-तथ्यों से उद्‌गत होते हैं।"यह विशेष रूप से ध्यान देने योग्य है कि यहाँ प्रसाद जी ने केवल सामान्य जीवन-तथ्य ही नहीं प्रस्तुत किए हैं। प्रेम संबंधी परिकल्पना में अपनी जीवन-दृष्टि और विश्व-दृष्टि भी प्रस्तुत कर दी है। यह लम्बा उद्धरण फैंटेसी के स्वरूप और उसके व्यावहारिक उपयोग को अच्छी तरह स्पष्ट कर देता है। यह फैंटेसी के संदर्भ में मुक्तिबोध की शिल्पगत विशेषताओं के विवेचन-विश्लेषण में भी पर्याप्त सहायक होगा।

मुक्तिबोध की शिल्पगत विशेषताओं पर विचार करने से पूर्व फैंटेसी के शिल्प की शक्ति एवं सीमाओं पर भी विचार कर लेना आवश्यक. है। मुक्तिबोध ने स्वयं इसे भाववादी बुर्जुआ शिल्प माना है। यथार्थवादी शिल्प और यथार्थवादी दृष्टि तथा भाववादी शिल्प और भाववादी दृष्टि के अंतर को स्पष्ट करते हुए मुक्तिबोध ने लिखा है, "यथार्थवादी शिल्प के अंतर्गत यथार्थ के बिंब, यथार्थ के स्वरूप और गति के नियमों में बंधकर प्रस्तुत होते हैं। दूसरे शब्दों में यथार्थवादी शिल्प के अंतर्गत विभाव-पक्ष (वस्तुपक्ष या मूल कथ्य) का चित्रण होता है, उस पक्ष के आधार पर भाव-पक्ष का उद्‌घाटन। इसके विपरीत भाववादी रोमैंटिक शिल्प के अंतर्गत भाव-पक्ष का ही चित्रण होता है और विभाव-पक्ष (वस्तु-पक्ष) को नेपथ्य (पद) में डाल दिया जाता है। संक्षेप में यथार्थवादी शिल्प और यथार्थवादी दृष्टिकोण में अंतर है। यह बहुत संभव है कि यथार्थवादी शिल्प के विपरीत, जो भाववादी शिल्प है उस शिल्प के अंतर्गत जीवन को समझने की दृष्टि यथार्थवादी रही हो।"-जहाँ तक मुक्तिबोध का प्रश्न है, उन्होंने भाववादी शिल्प अर्थात फैंटेसी के शिल्प में अपनी यथार्थवादी दृष्टि के साथ ही अपनी द्वंद्वात्मक भौतिकवादी समझ को कुशलतापूर्वक प्रस्तुत किया है।

फैंटेसी और भाववादी शिल्प के संबंध में मुक्तिबोध की उक्त मान्यताओं को ध्यान में रखते हुए यदि हम उनकी कविताओं का विश्लेषण करें तो हमें स्पष्ट पता चलेगा कि फैंटेसी के शिल्प का उन्होंने अपने ढंग से विकास किया है। वे कभी अपने अनुभूत जीवन-तथ्यों को सुदूर अतीत के साथ संबद्ध कर, फैंटेसी को स्वतंत्र दिक्काल (दिशा और समय) देते हुए, वर्तमान से आकर्षक दूरी पैदा करते हैं, तो कभी उसे वर्तमान के किन्ही अन्य तथ्यों या भिन्न स्थितियों के साथ संबद्ध करं मात्र स्थानगत (स्पेस) दूरी पैदा करते हुए एक रहस्यलोक की सृष्टि करते हैं।

यही नहीं, वरन् कहीं-कहीं वे वर्तमान जीवनतथ्यों को भविष्य के स्वप्निल आदर्श-लक्ष्यों के साथ जोड़ कर एक गहरी जिज्ञासा पैदा करते हैं। ये तीनों स्थितियाँ कभी अलग-अलग और कभी एक साथ भी बहुत सी कविताओं में मिलती हैं। फैंटेसी की इस बहुमुखी प्रकृति के कारण उनकी अधिकांश कविताओं में उनका पूरा व्यक्तित्व, सम्पूर्ण अनुभूत जीवन-सार और एक इच्छित जीवनादर्श ही नहीं समाविष्ट हुआ है, वरन् वह मानवी-सामाजिक संबंध क्षेत्र भी अभिव्यक्त हुआ है, जिसमें रहकर कवि ने सांस ली है और अपनी वर्ग दृष्टि के अनुकूल उन मानव-संबंधों के मूल्य-मानों को संशोधित-संपादित कर एक विश्व दृष्टि का रूप दिया है। इस ओर स्पष्ट संकेत करते हुए उन्होंने लिखा है :

उपमाएँ उद्‌घाटित-वक्षा मृदु स्नेहमुखी
एक टक देखतीं मुझको-प्रियतर मुसकातीं।
वे जगत-समीक्षा करते से मेरे प्रतीक-रूपक सपने फैलाते
आगामी
के दरवाज़े दुनिया के सारे खुल जाते
प्यार के किस्सों की
उदास गलियाँ
गम्भी-करुण मुसकराहट में
अपना उर का सब भेद खोलती हैं
अनजाने हाथ मित्रता के
मेरे हाथों में पहुँच ऊष्मा करते हैं
मैं अपनों से घिर उठता हूँ
मैं विचरण करता सा हूँ एक फैंटेसी में
यह निश्चित है कि फैंटेसी कल वास्तव होगी।" – (एक अंतर्कथा)

इस कविता में परंपरा का शोध करते हुए, उसके मूल्य को समझ लेने के बाद ये पंक्तियाँ आयीं हैं। इनमें आए अभिव्यक्ति के विभिन्न उपकरणों के साथ मुक्तिबोध ने एक गहरी आत्मीयता प्रकट की है। इसके साथ ही इन उपकरणों का आत्मानुभूत जीवन के साथ गहरा रिश्ता भी संकेतित हुआ है। कहने का अभिप्राय यह है कि मुक्तिबोध ने जिस प्रकार फैंटेसी को जीवन मर्मों के साथ लिपटी हुई माना है, उसी प्रकार उपमा, रूपक, प्रतीक, बिंब आदि को जीवन के गहरे स्पर्श से युक्त माना है। इस संबंध में अपनी धारणा को स्पष्ट करते हुए उन्होंने लिखा है कि "ध्यान में रखने की बात है कि कोई प्रतीक तभी तक भावोत्तेजना की शक्ति रखता है, जब तक किं उसकी जड़ें सामाजिक-सामूहिक अनुभवों की धरती में समायी हुई हों। मात्र व्यक्तिगत धरातल पर तो हज़ारों प्रतीक खड़े किए जा सकते हैं।"वस्तुत: यह बात सिर्फ प्रतीकों पर ही नहीं, उपमाओं, रूपकों, मिथकों, बिंबों आदि पर भी समान रूप से लागू होती है। इन सबको साथ लेकर ही फैंटेसी गतिशील होती है।[6,7]

उपर्युक्त सभी तथ्यों को ध्यान में रखते हुए फैंटेसी के शिल्प की दृष्टि से 'अंत:करण का आयतन" शीर्षक कविता के विश्लेषण द्वारा हम मुक्तिबोध की शिल्पगत विशेषताओं को आसानी से समझ सकते

"अंत:करण का आयतन" कविता का आरंभ अत्यंत सहज, आत्मीय ढंग से, किंतु असंतोषपूर्ण आत्मस्वीकृति के माध्यम से इस प्रकार होता है :

'अन्त:करण का आयतन संक्षिप्त है
आत्मीयता के योग्य
मैं सचमुच नहीं।

आगे भी अंत तक काव्य-नायक "मैं" के माध्यम से कविता आत्मकथन शैली में प्रस्तुत हुई है। काव्यनायक "मैं" आरंभ में ही अपनी "सर्वगामी छाया' के माध्यम से एक रहस्यमय वातावरण की सृष्टि करता है :

"पर क्या करूँ यह छाँह मेरी सर्वगामी है।
हवाओं में अकेली सांवली बेचैन उड़ती है
कि श्यामल-अंचला के हाथ में ,
तब लाल कोमल फूल होता है
चमकता है अंधेरे
में प्रदीपित द्वंद्व चेतस् एक
सत्-चित्-वेदना का फूल
उसको ले
न जाने कहाँ किन-किन सांकलों को
खटखटाती वह।'

यहाँ तक उस रहस्यमय छाया रूप फैंटेसी का वास्तविक रूप यद्यपि पूरी तरह उद्घाटित नहीं हुआ है, फिर भी उसके हाथ में स्थित प्रकाशमान "सत-चित-वेदना का द्वंद्व-चेतस फूल' रहस्य के आवरण में वस्तुत: द्वंद्वात्मक भौतिकवादी समझ है, जिसके प्रकाश में काव्य-नायक की छाया अपनी यात्रा सम्पन्न करती है। फैंटेसी की प्रकृति के अनुसार इसे संवेदनात्मक उद्देश्य की संज्ञा दी जा सकती है। काव्यनायक "मैं' की छाया द्वारा सांकलों को खटखटाने के बाद भी :

"नहीं इनकार वाले द्वार खुलते, किंतु
उन सोतों हुओं के गूढ़ सपनों में
परस्पर विरोधों का उ-विदारक शोर होता है
विचित्र प्रतीक गुंथ जाते, (अनिवार्य का भवितव्य)।
नीलाकाश
नीचे – और नीचे उतरता आता
उस नीलाभ छत से शीश टकराता
कि सिर से खून चेहरा रक्त-धाराओं भरा।'

यहाँ दरवाज़ा बंद कर सोने वाले लोग वर्गीय विषमता से ग्रस्त समाज के प्रतीक हैं। उनके गूढ़ स्वप्न परस्पर-विरोधी आशाओं-आकांक्षाओं के प्रतीकाभास हैं, जिन्हें "उर-विदारक' शोर के रूप में सुनकर काव्य-नायक एक "अनिवार्य भवितव्य' (अवश्यंभावी घटना) का अनुभव करता है। यह अनिवार्य भवितव्य वस्तुत: वर्ग-संघर्ष की अनिवार्यता है, जिसका दबाव एक गंभीर दायित्व के रूप में काव्यनायक "मैं" को आक्रांत करता है। नीलाभ आकाश से टकराकर सिर का फूटना चेहरे का रक्तस्नात् होना, उपर्युक्त तथ्य का संकेतक है। 'अंधेरे में' कविता का कर्ता "रक्तलोक-स्नात पुरुष' भी "आत्मा की प्रतिमा" के रूप में प्रकट होकर काव्य-नायक "मैं' को अपने कठिन दायित्व का अनुभव : कराता है। ('अंधेरे में" कविता के प्रथम खंड के अंतिम अंश को देखें)।

यहाँ आकर फैंटेसी की गति एक विराम लेती है, दूसरी दिशा में मुड़ने के लिए। इस तथ्य को पहले भी संकेतित किया जा चुका है कि फैंटेसी एक "संवेदनात्मक उद्देश्य" को लेकर गतिशील होती है, जिसमें प्रतीक, रूपक, बिंब आदि उसके अनुगत बन कर आते हैं। अत: फैंटेसी के विश्लेषण की प्रक्रिया में इनका भी विश्लेषण आवश्यक है। दूसरी बात यह कि मुक्तिबोध एक क्रांतिकारी चेतना के कवि हैं।

अत: उनके लिए सामाजिक अंतर्विरोधों का ज्ञान मात्र ही सामाजिक क्रांति की शर्त नहीं है। उस पर और अधिक सोचने-विचारने तथा वैमनस्यपूर्ण अंतर्विरोध के निषेध के लिए "वंद्वात्मक निषेध" की वास्तविकता से परिचित होना और उसके अनुकूल वातावरण के निर्माण का प्रयास भी आवश्यक है। सामाजिक अंतर्विरोधों के "उर-विदारक शोर से जागृत चेतना चिंताक्रांत होकर सोचने के लिए विवश करती है :

"कि बेबीलोन सचमुच नष्ट होगा क्या?
प्रतिष्ठित राज्य संस्कृति के प्रभावी दृश्य
सुंदर सभ्यता के तुंग स्वर्ण-कलश
सब आदर्श
उनके भाष्यकर्ता ज्ञानवान महर्षि
ज्योतिर्विद्, गणितशास्त्री, विचारक, कवि,
सभी वे याद आते हैं।
प्रतापी सूर्य हैं वे सब प्रखर जाज्वल्य।"

"बेबीलोन" सचमुच नष्ट होगा क्या? इस प्रश्न के माध्यम से फैंटेसी यहाँ एक नया मोड़ लेती है। वैसे बेबीलोन यहाँ प्राचीन-मध्यकालीन सामाजिक शोषण पर आधारित राज्याश्रयी संस्कृति और सभ्यता का प्रतीक है, लेकिन अपनी रूपकीय मुद्रा के कारण वह पूँजीवादी शोषण पर आधारित आधुनिक राज्याश्रयी संस्कृति का प्रतीक भी बन जाता है। इस प्रकार मुक्तिबोध ने वर्तमान जीवन-तथ्यों और उसके मूलभूत प्रश्नों को सुदूर अतीत में प्रक्षेपित कर वर्तमान से एक आकर्षक दूरी पैदा की है। यही कार्य प्रसाद जी ने अपनी

"कामायनी" में फैंटेसी के माध्यम से किया है। यहाँ भी फैंटेसी का अपना स्वतंत्र ढाँचा है, अपना स्वतंत्र दिक्काल और निजी इतिहास-भूगोल है, जो पूरी तरह प्राचीन-मध्यकालीन वातावरण पर आधारित है। यह कार्य कवि ने "भाष्य कर्ता ज्ञानवान महर्षि, ज्योतिर्विद, गणित शास्त्री, विचारक, कवि" आदि शब्दों के माध्यम से भी बखूबी सम्पन्न किया है। लेकिन इस ढांचे में भरे गए रंग वर्तमान जीवन-तथ्यों द्वारा उपस्थित किए गए हैं। आगे का चित्रण भी इस रहस्य को बनाए रखने में सहायक होता है :

"पर यह क्या? अंधेरे स्याह धब्बे सूर्य के भीतर
बहुत विकराल
धब्बों के अंधेरे विवर-तल में से
उभर कर, उमड़कर दल बांध
उड़ते आ रहे हैं गिद्ध
पृथ्वी पर झपटते हैं
निकालेंगे नुकीली चोंच से आंखें।
कि खायेंगे हमारी दृष्टियाँ ही वे।"

(इन पंक्तियों को निराला की कविता "राजे ने अपनी रखवाली की" से मिला कर यदि आप देखें तो इनका मूल आशय स्वयं स्पष्ट हो जाएगा) – यहाँ "प्रखर सूर्य' के भीतर स्याह धब्बों के अंधेरे विवरतल से निकलकर पृथ्वी की ओर झपटने वाले गिद्धों की पंक्तियाँ' जहाँ जन विरोधी प्राचीन-सामंतीय चिंतन के दूषित प्रभाव को संकेतित करती हैं, वहीं वर्तमान पूँजीवादी औद्योगिक सभ्यता और संस्कृति की छाया-माया में विकसित होने वाले तथाकथित महान चिंतन के जन-विरोधी स्वरूप को भी संकेतित करती हैं। वस्तुत: पूँजीवाद अपनी छत्र-छाया में पलने वाले सभी क्षेत्रों के चिंतकों-विचारकों की भावधारा, विचारधारा को अपने प्रचार-प्रसार के सशक्त माध्यमों द्वारा जिस प्रकार दृष्टिविहीन करता है, उसका स्पष्ट संकेत इन पंक्तियों में हुआ है। अत: उक्त "प्रतापी सूर्यों" की प्रखरता से उत्पन्न चिंताधारा के प्रति काव्य-नायक की प्रतिक्रिया है :

"मन में ग्लानि, गहन विरक्ति, मितली के बुरे चक्कर
भयानक क्षोभ
पीली धूल के बेदम बगूले, और
गंदे कागजों का मुन्सिपल कचरा।"

यहाँ मुक्तिबोध ने पूँजीवाद, उसकी औद्योगिक-व्यावसायिक सभ्यता का कहीं नाम नहीं लिया है। अत: व्याख्या में इन शब्दों के प्रयोग को देख कर आप चौंक सकते हैं और यह भी सोच सकते हैं कि हमने इन्हें अपनी ओर से मुक्तिबोध पर आरोपित कर दिया है। लेकिन ऐसा सोचना-समझना उचित नहीं होगा। वस्तुत: फैंटेसी के शिल्प की, यह विशेषता है कि उसमें विभाव-पक्ष (वस्तु पक्ष या कथ्य) को नेपथ्य (पर्द) में डाल दिया जाता है और कल्पना के माध्यम से उपमाओं, प्रतीकों, रूपकों, बिंबों आदि के सहारे-संक्षेप में कहना चाहें तो काल्पनिक घटनाओं, वस्तुओं, दृश्यों आदि के सहारे केवल भाव या प्रभाव-पक्ष का चित्रण किया जाता है। इसी कविता में आगे एक स्थान पर सर्वहारा की चेतना की विजय की घोषणा करते हुए मुक्तिबोध ने लिखा है, "सब सूर्य फूटेंगे व उनके केंद्र टूटेंगे।" "अंधेरे में" कविता में उन्होंने लिखा है :

"मुझे तो जिंदगी की सरहद
सूर्यों के प्रांगण (आंगन) पार जाती सी दीखती है।"

इनका अभिप्राय है कि पूँजीवादी जीवन-दर्शन, कला-दर्शन संपूर्ण चिंतन-प्रणाली कोई शाश्वत और अकाट्य नहीं है। अपने जन विरोधी स्वरूप के कारण उसकी समाप्ति अवश्यंभावी है। यदि मुक्तिबोध यहाँ यथार्थवादी शिल्प का सहारा लेते तो यह कवितांश "तार सप्तक' में संग्रहीत उनकी "पूँजीवादी समाज के प्रति' शीर्षक कविता की तरह इस प्रकार होता :'

"इतने प्राण इतने हाथ, इतनी बुद्धि,
इतना ज्ञान, संस्कृति और अंत: शुद्धि
इतना काव्य, इतने शब्द, इतने छंद
इतना गूढ़, इतना गाढ़, सुंदर जाल
– केवल एक जलता सत्य देने टाल
तेरे रक्त से भी घृणा आती तीव्र
तुझको देख मितली उमड़ आती शीघ्र .
तू है मरण, तू है रिक्त, तू है व्यर्थ
तेरा ध्वंस केवल एक तेरा अर्थ।'

इसे "अंत:करण का आयतन" कविता के उपर्युक्त अंश के साथ मिलाकर आप देखें तो भाववादी शिल्प और यथार्थवादी शिल्प के अंतर को समझने के साथ ही मुक्तिबोध की एक कलाकार के रूप में सही पहचान भी कर सकते हैं।

अपनी अधिकांश कविताओं की भांति मुक्तिबोध ने इस कविता को खंडों में विभक्त नहीं किया है, लेकिन विश्लेषण के दौरान वे खंड स्पष्ट रूप से दिखायी देते हैं। यहाँ से कवि की वाचक रूप फैंटेसी वर्तमान जीवन-तथ्यों से निष्कर्ष ग्रहण कर एक भिन्न दिशा में प्रवृत्त होती है :

"मेरी छाँह सागर-तरंगों पर भागती जाती,

| e-ISSN: 2319-8753, p-ISSN: 2320-6710| www.ijirset.com | Impact Factor: 7.512|

|| Volume 9, Issue 7, July 2020 ||

दिशाओं पर हलके पांव
नाना देश-दृश्यों में
अजाने प्रियतरों का मौन चरण स्पर्श, वक्ष स्पर्श करती मुग्ध
घर में घूमती उनके,
लगाती लैम्प, उनकी लौ बड़ी करती।
व अपने प्रियतरों के उजलते मुख को मधुर एकांत में पाकर
किन्हीं संवेदनात्मक ज्ञान अनुभव के
अचानक मुग्ध आलिंगन
मनोहर बात, चर्चा, वाद और विवाद
उनका अनुभवात्मक ज्ञान संवेदन
समूची चेतना की आग
पीती है।'

यहाँ पहुँच कर फैंटेसी की यथार्थमयी रहस्यमयता पूरी तरह उद्‍घाटित हो जाती है। वस्तुत: "अंत:करण का आयतन' कविता को समग्र रूप से समझने के लिए "नयी कविता का आत्म-संघर्ष तथा अन्य निबंध' शीर्षक ग्रंथ में दिया गया "अंतरात्मा की पक्षधरता' शीर्षक मुक्तिबोध का लेख पर्याप्त सहायक है। इसमें मुक्तिबोध ने लिखा है, "हर एक समस्या का एक समाधान है – चाहे अधूरा ही क्यों न सही। इसलिए मैं अपने आस-पास के लोगों, अपने मित्रों, आत्म संबंधियों और अपने सहयोगियों तथा परिचितों में उसे ढूंढने लगता हूँ। और, उनसे बहस छिड़ जाती है, और बहुत बार धरित्री अपने रत्न उगल देती है, और मैं अपने अभाव में भी अत्यंत सम्पन्न अनुभव करने लगता हूँ। किंतु देश-विदेश में हो रहे प्रयत्नों की संभावना की उपेक्षा मैं नहीं कर पाता। और इस तरह मेरी छाया पृथ्वी पर भटकती रहती है।[8,9] "अंत:करण का आयतन संक्षिप्त है' नामक एक मेरी कविता में मेरी इस प्रवृत्ति का चित्रण है। मेरे अपने लेखे उसमें एक लिरीसिज्म (प्रगीतात्मकता) है, एक यथार्थ-प्रवण रुमानी किस्म की कल्पनाशीलता है, एक आवेश है और अंतस में आत्मालोचन। इस प्रकार, मैं द्वंद्व-स्थिति में पड़कर मैत्री ही प्राप्त करता हूँ।

निष्कर्ष

उपर्युक्त काव्यपंक्तियों के संदर्भ में इस वक्तव्य को देखें तो यह आत्म-छाया कोई अन्य नहीं, अपनी चेतना या अन्तरात्मा ही है, जिसकी यात्रा या भ्रमण सोद्देश्य है। "स्व" से ऊपर उठकर, आत्मबद्धता की स्थिति से मुक्त होकर वह अपने जैसे अन्य लोगों के साथ एकाकार होती है, एक आत्मीय स्वजन की भांति उनके चरण का स्पर्श करती है, उन्हें सीने से लगाती है, उनके घर-आंगन में घूमते हुए उन्हें ज्ञान का प्रकाश देती है और इस प्रकाश में मुग्ध भाव से उनका आलिंगन करती है, उनसे चर्चा और वाद-विवाद करते हुए उन्हें शिक्षित करती है, उनसे स्वयं शिक्षा लेती है। वस्तुत: मुक्तिबोध ने निर्वैयक्तिकता की इस दशा को आत्म-प्रसार की स्थिति के रूप में स्वीकार किया है।

इस लम्बी कविता में कवि की वाचक आत्मछाया रूप फैंटेसी उन्मुक्त भाव से सहानुभूतिपूर्ण कल्पना के सहारे समूचे विश्व का भ्रमण करती है। वह खेतों-खलिहानों, खदानों, पहाड़ों, घाटियों में विचरण करते हुए :

'सिखाती-सीखती रहती,
परखती, बहस करती और ढोती बोझ
मेहनत से, ज़मीनें साफ करती है,

दिवालों की दरारें परती-भरती,

व सीती फटे कपड़े, दिल रफ़ू करती,

किन्हीं प्राणांचलों पर वह कसीदा काढ़ती रहती

स्वयं की आत्मा की फूल-पत्ती के नमूने का।"

इस प्रकार यह यात्रा सार्थक और सप्रयोजन है, जिस पर अपनी ओर से टिप्पणी न कर आपके सम्मुख मैं मुक्तिबोध की ही एक टिप्पणी प्रस्तुत करना चाहूँगा, "आज एक ऐसे कवि-चरित्र की आवश्यकता है, जो मानवीय वास्तविकता का बौद्धिक और हार्दिक आकलन करते हुए सामान्य जनों के गुणों और उनके संघर्षों से प्रेरणा और प्रकाश ग्रहण करें उनके संचित जीवन-विवेक को स्वयं ग्रहण करे तथा उसे और अधिक निखार कर, कलात्मक रूप से उन्हीं की चीज को उन्हें लौटा दे। सामान्य जनों की अपार आध्यात्मिक और बौद्धिक क्षमता में यदि हमारा विश्वास है, हमारी आस्था है तो हम अपने ही पिता के सच्चे पुत्र होंगे। …कवि-चरित्र के विकास का हमारा यह संघर्ष, युग की विवेक-चेतना बनने का हमारा यह मौन प्रयास अपने-आप में आध्यात्मिक महत्व रखता है, इससे कौन इनकार करेगा।" –

अपने व्यापक सर्वेक्षण की प्रक्रिया में छायाभास रूप फैंटेसी आत्मचेतस् से विश्वचेतस बनते हुए एक निश्चित निष्कर्ष पर पहुँचती है, जिसे कवि का वाचक "मैं" इस प्रकार प्रस्तुत करता है :

| e-ISSN: 2319-8753, p-ISSN: 2320-6710| www.ijirset.com | Impact Factor: 7.512|

|| Volume 9, Issue 7, July 2020 ||

"मैं देखता क्या हूँ कि –
पृथ्वी के प्रसारों पर जहाँ भी स्नेह या संगर
वहाँ पर एक मेरी छटपटाहट है, ..
.एक मेरा भी वहाँ पर प्राण-प्रतिनिधि है
अनुज, अग्रज, मित्र, कोई आत्म छाया-चित्र
धरती के विकासी द्वंद-क्रम में एक मेरा छटपटाता वक्ष, .
..स्नेहाश्लेष या संगर कहीं भी हो
कि धरती के विकासी द्वन्द्व-क्रम में एक मेरा पक्ष,
मेरा पक्ष नि:संदेह।"

यह दूसरा निष्कर्ष है। पहला निष्कर्ष था – वर्ग विभक्त समाज में वंद्व की स्थिति। लेकिन यहाँ उस द्वंद्व में अपने पक्ष का निर्धारण है। इस पक्षधरता को मुक्तिबोध ने किस प्रकार अपनी अंतरात्मा का प्रश्न बनाया है, इस पर हमने पिछली इकाई में विस्तार से विचार कर लिया है। यहाँ आपका ध्यान केवल इस तथ्य की ओर दिलाना है कि आरंभ में जो फैंटेसी "सत्-चित्-वेदना का द्वंद्व-चेतस फूल" लिए हुए एक सांवली छाया के रूप में उपस्थित हुई थी, वह किस प्रकार चित्रों और परस्पर संबद्ध स्थितियों की एक सुसंगत पंक्ति बनाते हुए आगे बढ़ रही है। काव्य की इस जटिल शिल्प-विधि में वर्णनात्मकता और लाक्षणिकता, भाव-चित्रण और वस्तु-संकेत, आत्मकथन और संबोधन, प्रतीक-बिंब और रूपक-योजना, रहस्यमय वातावरण की सृष्टि आदि भाववादी शिल्प के अनेक परस्पर संबद्ध और असंबद्ध उपकरण . गुंफित हुए हैं। इसके साथ ही मुक्तिबोध ने लक्षणा-व्यंजना, रूपक-उपमा, प्रतीक-बिंब-मिथक आदि के बने-बनाए शास्त्रीय ढांचे को छिन्न-भिन्न करके फैंटेसी के शिल्प के माध्यम से उन्हें एक नयी तरतीब और तहजीब प्रदान की है। वस्तुत: इसे भाववादी बुर्जुआ शिल्प का जनवादी शिल्प में रूपांतरण भी कहा जा सकता है।[10]

अपने पक्ष का निर्धारण करने के बाद कवि का वाचक "मैं' इस यथार्थ जगत को एक ममतामय, अत्यंत आकर्षक रूप में देखता है :

"मुझको तो समूचा दृश्य धरती की सतह से उठ

अनावृत अंतरिक्षाकाश-स्थित दीखता ।
व उस आकाश में से बरसते मुझ पर
सुंगधित रंग-निर्झर और
छाती भीग जाती है, व आंखों में
उसी की रंग-लौ चमकती सी।"

इसे मुक्तिबोध ने "अपने ही जीवन के मूल स्रोतों का अमृत-पान" और "युग की विवेक-चेतना बनने का मौन प्रयास" कहा है। अपनी संपूर्ण अच्छाइयों और बुराइयों के साथ पृथ्वी का यह दृश्य स्वर्गीय आभा से जगमगाता हुआ दिखायी देता है।

यहाँ पहुँच कर फैंटेसी का दूसरा दौर समाप्त हो जाता है। आगे वह एक नये स्वप्न के रूप में उपस्थित होती है :

"रमणीयतम जो स्वप्न देखा था

वही

हाँ, वही

बिल्कुल सामने प्रत्यक्ष है।

यह "प्रतेजस आनना कोई अन्य नहीं, वरन् काव्य-नायक "मैं' की अपनी "श्यामल अंचला" छाया ही है, जो अंतर्बाह्य और देश-देशांतर का परिभ्रमण करने के बाद "लावण्य से युक्त तेजस्विनी प्रतिभा" के रूप में उपस्थित हुई है। अपनी "द्वंद्व चेतस् वेदना" का अनुभव-निष्कर्ष प्रस्तुत करते हुए वह काव्यनायक "मैं' को चुनौती देती है :

"मुझसे भागते क्यों हो,

तुम्हारी स्वप्न वीथी कर सकेगी क्या?

बिना संसार के सर्जन असंभव है,

समन्वय झूठ है,

सब सूर्य फूटेंगे

व उनके केंद्र टूटेंगे

उड़ेंगे खंड

| e-ISSN: 2319-8753, p-ISSN: 2320-6710| www.ijirset.com | Impact Factor: 7.512|

|| Volume 9, Issue 7, July 2020 ||

बिखरेंगे गहन ब्रह्मांड में सर्वत्र

उनके नाश में तुम योग दो"

(मुक्तिबोध की रचना-प्रक्रिया के विश्लेषण के क्रम में इस अंश की व्याख्या हो चुकी है – उसे देख लें) निर्माण से पूर्व ध्वंस के सौंदर्य से अभिभूत कवि का वाचक "मैं" "प्रतेजस आनना" से पूर्ण साक्षात्कार के लिए अंतर्गमन करता है। उसके रूप-स्वरूप का पूरा जायज़ा लेने के बाद एक नये बोध के साथ जब वह बाहर आता है तो :

"कि इतने में
अचानक कान में फिर से
नमोमय भूमिमय लहरा रहा सा
गंधमय संगीत

मानो गा रहा कोई पुरुष

आकाश के नीचे

खुले बेछोर क्षिप्रा (नदी विशेष) कूल पर उन्मुक्त।"

यहाँ "बेछोर क्षिप्रा-कूल' मूर्त जगत में प्रवेश का सूचक है, अंतर्विरोध-ग्रस्त समाज में आगमन का संकेतक है – जहाँ पहुँच कर "सुगंधित संगीत" के वातावरण में काव्य-नायक "मैं' को एक नये सत्य का ज्ञान होता है:

"लेकिन विरोधात्मक चेतना मेरी
उसी क्षण सुन रही है
श्याम संध्या-काल मंदिर आरती आलाप बेला में
भयानक श्वान दल का ऊर्ध्व क्रन्दन
वह उदासी की ऊंचाई पर चढ़ा लहरा रहा रोना
सुन रहा हूँ आज दोनों को
कि है आश्चर्य!!"

वस्तु जगत में, समाज में एक तरफ मंदिर में संध्याकालीन आरती और दूसरी तरफ कुत्तों का ऊपर मुँह उठाए हुए रोना – शुभ और अशुभ के ये दोनों दृश्य एक साथ प्रस्तुत कर कवि ने समाज के वैमनस्यपूर्ण अन्तर्विरोध का, उसके मूल-द्वंद्व का संकेत किया है। समाज का यह अन्तर्विरोध काव्यवाचक 'मैं" के लिए चिर-प्रतीक्षित सौंदर्य के रूप में, निर्माण से पूर्व संहार के सौंदर्य के रूप में उपलब्ध हुआ है। इस संबंध में उसकी प्रतिक्रिया इस प्रकार व्यक्त हुई है :

"यह भी खूब जिस सौंदर्य को मैं खोजता फिरता रहा दिन-रात वह काला लबादा ओढ़ पीछे पड़ गया था रात-दिन मेरे। कि उद्घाटित हुआ वह आज कि अब सब प्रश्न जीवन के मुझे लगते कि मानो रक्त-तारा चमचमाता हो कि मंगल-लोक हमको बुलाता हो 'साहसिक यात्रा-पथों पर और मेरा हृदय दृढ़ होकर धड़कता है"

वस्तुत: समाज के मूलभूत अंतर्विरोध की सही जानकारी ही विषमताग्रस्त समाज की बेहतरी का समुचित मार्ग प्रस्तुत करती है। यहाँ "रक्त-तारा" का चमचमाना युगान्तरकारी क्रांति की अनिवार्यता का प्रतीक है तो "मंगल-लोक" का आह्वान एक नयी और कल्याणकारी समाज-व्यवस्था को प्रतीकित करता है। लेकिन क्रांति कोई यंत्रवत स्वचालित प्रक्रिया नहीं है। उसके लिए परिपक्व भौतिक स्थितियों का होना भी आवश्यक है। जन चेतना का अंग बन जाने के बाद क्रांतिकारी विचारधारा के बिना क्रांति के दिशाहीन ही नहीं, विनाशकारी होने की संभावना भी बढ़ जाती है। लेकिन यहाँ वैचारिक उपकरण के रूप में "सत्-चित-वेदना का द्वंद्व चेतस् फूल" और मंगल-व्यवस्था के रूप में "मंगल-लोक" से जुड़कर क्रांति निर्माण के लिए संहार का अत्यंत मानवीय रूप धारण कर लेती है। क्रंतिकारी परिस्थितियों में बौद्धिक समुदाय की भी एक भूमिका होती है। उसके सैद्धांतिक और व्यावहारिक पक्ष को दृढ़ करते हुए वह क्रांतिकारी शक्तियों का सही निर्देश कर सकता है। प्रकारान्तर से कवि कलाकार की गणना भी बुद्धिजीवी समुदाय में ही होती है। एक बुद्धिजीवी के रूप में, उसकी भूमिका को कविता के अंत में काव्य-वाचक मैं के माध्यम से मुक्तिबोध ने इस प्रकार कलात्मक अभिव्यक्ति प्रदान की है :

"कि मैं तो एक आयुध/मात्र साधन/प्रेम का वाहन/
तुम्हारे द्वार पर आया हुआ मैं अस्त्र-सज्जित रथ/मेरे
चक्र दोनों अग्रगति के लिए व्याकुल हैं/व मेरी प्राण

त्रासदी तुम्हारी प्रतीक्षा में है/यहाँ बैठो, विराजो,/

आत्मा के मृदुल आसन पर/हृदय के, बुद्धि के ये अश्व

तुमको ले उड़ेंगे और/शैल-शिखरों की चढ़ानों पर

| e-ISSN: 2319-8753, p-ISSN: 2320-6710| www.ijirset.com | Impact Factor: 7.512|

|| Volume 9, Issue 7, July 2020 ||

बसी ठण्डी हवाओं में/उसके पार/गरु गंभीर मेघों

की चमकी लहर-पीठों पर/व उसके भी परे, आगे

व ऊँचे,/स्वर्ण-उल्का क्षेत्रों में रथ तुम्हें ले जाएगा!!/

नक्षत्र-तारक-ज्योति-लोकों में घुमा ले आएगा

सर्वत्र। रथ के यंत्र सब मजबूत हैं!/उन प्रश्न

लोकों में यहाँ की बोलियाँ/तुम को

बुलाती हैं। कि उनको ध्यान से सुन लो।"

यहाँ यह ध्यान में रखने की बात है कि रूप (फार्म या शिल्प) जिसके माध्यम से कलां वास्तविकता को रूपायित करती है, वह सामाजिक चेतना की अभिव्यक्ति की दूसरी प्रतिविधियों या दूसरे अनुशासनों (दर्शन, राजनीति, धर्म, संस्कृति, विधि-विधान) और कला के मध्य किसी दृढ़ विभाजन-रेखा का औचित्य सिद्ध नहीं करता। यदि हम काव्य-कला के वस्तु-तत्व (कांटेट) और उसके आग्रह-अनुरोधों की सर्वथा उपेक्षा करके केवल 'फार्म" (शिल्प) की दृष्टि से कला का विश्लेषण करेंगे तो एक ज्ञान-विधा के रूप में उसकी शक्ति और उसके वैशिष्ट्य को समझने में निश्चित रूप से असमर्थ होंगे। आप देखेंगे कि छायावादी और नयी कविता के बहुत से कलावादी समीक्षक फार्म या शिल्प के विश्लेषण में रूपकों, प्रतीकों, बिंबों की बारीकियों को दिखाने में ही अधिकांशत: उलझकर रह गए हैं। ऐसी स्थिति में नये समीक्षकों को बनावट और बुनावट (स्ट्रक्चर और टेक्सचर) के मध्य का तनाव तो दिखाई देता है, लेकिन कथ्य और शिल्प के मध्य का तनाव न दिखाई देने के कारण रचना में व्यक्त कथ्य पूरी तरह उपेक्षित रह जाता है।

इसलिए प्रस्तुत कवितांश में आए हुए आयुध (अस्त्र-शस्त्र), अस्त्र-सज्जित रथ, प्राण-आसंदी (बैठने का स्थान), आत्मा का मृदुल आसन, हृदय और बुद्धि के अश्व, शैल-शिखरों की यात्रा, मेघों की चमकती लहरपीठ, स्वर्ण-उल्का-क्षेत्र, नक्षत्र-तारक-ज्योति-लोक, रथ के यंत्र आदि की लाक्षणिकता, रूपकीय प्रतीकात्मकता या प्रतीकात्मक बिंबात्मकता के निरपेक्ष विश्लेषण द्वारा मुक्तिबोध को आध्यात्मवादी-रहस्यवादी घोषित कर देने का खतरा उत्पन्न हो सकता है। वस्तुत: यहाँ मुक्तिबोध ने एक चिंतक कलाकार के रूप में क्रांतिकारी शक्तियों के प्रति पूर्ण आत्म-समपर्ण का भाव व्यक्त किया है। क्रांति के एक आयुध या शस्त्र के रूप में, एक साधक के रूप में वे अपने को क्रांतिकारी शक्तियों के हवाले कर देते हैं। यहाँ आयुध या शस्त्र अपने लक्षाणिक अर्थ में प्रयुक्त हुआ है।

(इस अस्त्र-सज्जित रथ को यदि "राम-चरितमानस' में चित्रित राम के धर्म-रथ, दोहा सं0 79 की चौपाइयों के साथ मिलाकर देख लें तो आपके लिए इसकी विशेषताओं को समझना आसान हो जाएगा) वस्तुत: "युग की विवेक चेतना बनने के इस मौन प्रयास" का परीक्षण करने के लिए गृहीत वस्तु-तत्व या कथ्य को पूर्ण रूप से ध्यान में रख कर यदि एक अत्यन्त व्यापक फैंटेसी के अधीन उपर्युक्त कल्पना-चित्रों, बिंबोंप्रतीकों की रूपकीय योजना पर विचार करें तो सभी नयी समाज-व्यवस्था के उच्चादर्श/समन्वित मनोराज्योन्मुखता (यूटोपिया) की एक कलात्मक अभिव्यक्ति के रूप में दिखाई देंगे।

यथार्थ के पुनरुत्पादन से हटकर यथार्थ जीवन की पुनर्रचना की इस प्रकृति का उद्‌घाटन करते हुए ए.एस.वास्केत्स ने लिखा है, "द आर्टिस्ट सीज बिफोर हिम द इमीडिएट, गिवेन, कांक्रीट रिएलिटी, बट ही कैन नाट रिमेन आन दैट लेवेल, लिमिटिंग हिम सेल्फ टु रिप्रोड्यूसिंग इट। ह्यूमन रिएलटी रिवील्स इट्स सीक्रेट टु द आर्टिस्ट ओनली टु द एक्सटेंट दैट, स्टार्टिंग फ्राम द इमीटिएट ऐंड इंडिविडुवल, ही राइजेज टु ए यूनिवर्सल लेवेल, टु रिटर्न अगेन टु द कांक्रीट। बट दिस इंडिविडुवल ऑर अर्टिस्टिक कांक्रीटनेस इज प्रेसाइजली द फ्रट ऑव ए प्रासेस ऑफ क्रिएशन, नाट ऑव इमीटेशन।"

उपर्युक्त पंक्तियों में कला की रचना-प्रक्रिया के महत्व को रेखांकित करते हुए लेखक ने मानव. यथार्थ की, ठोस यथार्थ की कलात्मक अभिव्यक्ति की स्थिति को अत्यंत कुशलता से उद्‌घाटित किया है। मुक्तिबोध द्वारा प्रतिपादित कला के तीन क्षणों को ध्यान में रखते हुए यदि हम इस कविता के प्रारंभिक बंद (स्टेंजा) :

'अंत:करण का आयतन संक्षिप्त हैं
आत्मीयता के योग्य
मैं बिलकुल नहीं'

पर विचार करें तो स्पष्ट प्रतीत होगा कि यह अंत:करण का आयतन उनके अपने अंत:करण का, उनके अपने संचित अनुभवों का दायरा है। जब ये अनुभव अपने दुखते-कसकते मूलों (स्रोतों) से अलग होकर निर्वैयक्तिकता की स्थिति में पहुँचते हैं तो एक फैंटेसी का रूप ग्रहण करते हैं। अनुभव की व्यक्तिगत पीड़ा से उत्पन्न होने के कारण फैंटेसी में एक संवेदनात्मक उद्देश्य समाया रहता है। अन्यत्र फैंटेसी की स्थिति को मुक्तिबोध ने निर्वैयक्तिकता की स्थिति के रूप में सौंदर्यानुभूति का वास्तविक क्षण माना है। इस क्षण में जहाँ आत्म-पक्ष से तटस्थता होती है, वहीं परपक्ष के साथ गहन तन्मयता भी आ जाती है। इसी को ए.एस.वास्केत्स ने व्यक्तिगत स्तर से कलाकार के सार्वभौम स्तर तक उठने की संज्ञा दी है। इस स्तर तक पहुँचकर ही कलाकार यथार्थ जीवन की पुनर्रचना कर पाता है। फैंटेसी के शिल्प के माध्यम से मुक्तिबोध भी यही कार्य करते हैं।[11]

| e-ISSN: 2319-8753, p-ISSN: 2320-6710| www.ijirset.com | Impact Factor: 7.512|

|| Volume 9, Issue 7, July 2020 ||

संदर्भ

1) मुक्तिबोध रचनावली, संपा. नेमीचंद जैन, राजकमल प्रकाशन, पृष्ठ संख्या 18
2) गजानन माधव मुक्तिबोध, एक साहित्यिक की डायरी, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, पृष्ठ संख्या 23
3) नंदकिशोर नवल, मुक्तिबोध की कविताएं : बिम्ब-प्रतिबिम्ब, प्रकाशन संस्थान, पृष्ठ संख्या 57
4) गजानन माधव मुक्तिबोध, एक साहित्यिक की डायरी, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, पृष्ठ संख्या 20
5) चांद का मुंह टेढ़ा है (कविता संग्रह), 1964, भारतीय ज्ञानपीठ
6) काठ का सपना (कहानियों का संकलन), 1967, भारतीय ज्ञानपीठ
7) सतह से उठता आदमी (कहानियों का संकलन), 1971, भारतीय ज्ञानपीठ
8) नयी कविता का आत्मसंघर्ष तथा अन्य निबंध (निबंध), 1964, विश्वभारती प्रकाशन
9) एक साहित्यिक की डायरी (निबंध), 1964,
10) भारतीय ज्ञानपीठ विपात्र (उपन्यास), 1970
11) नये साहित्य का सौन्दर्य-शास्त्र, 1971, राधाकृष्ण प्रकाशन